

अध्याय ३ : भारतीय अध्यात्म व दर्शन परम्परा : एक संक्षिप्त परिचय

i. भारतीय अध्यात्म दर्शन की अवधारणा और उसका स्वरूप

भारतीय दर्शन-शास्त्र की अवधारणा को स्पष्ट करने से पूर्व स्वयं लेखक नरेंद्र कोहली के दर्शन के विषय में क्या विचार हैं इस बात को जान लेना चाहिए। कोहलीजी के अनुसार “दर्शन का मतलब चिंतन है। सत्य को जानने का मार्ग है”¹¹..

Philosophy शब्द की उत्पत्ति ग्रीक शब्द से हुई है जिसका अर्थ है ‘love of wisdom.’ दर्शन शब्द का आगमन संस्कृत भाषा के ‘दृश’ शब्द से हुआ है जिसका अर्थ होता है देखना। दर्शन में वाद-विवाद की भूमिका है। दर्शन का लक्ष्य किसी भी वस्तु के विषय में अंतिम निर्णय तक पहुँचना होता है। जब तक अंतिम निर्णय तक नहीं पहुँचा जाता तब तक वाद-विवाद का क्रम चलता ही रहता है। भारतीय चिंतकों में प्रसिद्ध चिंतक ‘वात्स्यायन’ का कहना था कि “पदार्थों के विवेचन में त्रिपक्षीय प्रक्रिया अपनाई जाती है। सर्वप्रथम किसी वस्तु का केवल नाम लिया जाता है और आवश्यकता हुई तो उसका वर्गीकरण किया जाता है। इसे उद्देश्य कहा जाता है। तत्पश्चात् वस्तु की स्पष्ट परिभाषा दी जाती है, जिसे लक्षण कहते हैं। सबसे अंत में परीक्षा अथवा आलोचनात्मक परीक्षण होता है जिसमें विचित्र दृष्टियों से वस्तु पर विचार किया जाता है तथा मिथ्या विचारों को हटाकर और आपत्तियों का प्रत्याख्यान करके वस्तु के स्वरूप पर अंतिम निर्णय देने का प्रयास किया जाता है। दूसरे शब्दों में, परीक्षा दार्शनिक निर्णय तक पहुँचने की पूर्व दशा है”¹²..

भारतीय दर्शन की विशेषता उसकी प्राचीनता है। भारतीय दर्शन का मूल अध्यात्म दर्शन है। भारतीय दर्शन की शुरुआत वेदों, पुराणों, उपनिषदों आदि से होती है। प्रख्यात चिन्तक ‘डॉक्टर मृणालकांति गंगोपाध्याय’ अपनी पुस्तक ‘भारत में दर्शनशास्त्र’ में लिखते हैं कि “क्या संसार शून्य से उत्पन्न है ? अथवा इसकी उत्पत्ति किस वस्तु से हुई है ? क्या बाह्य जगत सत्य है ? या कल्पना की उड़ान मात्र है”¹³.. इस सुंदर प्रकृति का मूल रहस्य क्या है ?, वह अव्यक्त सत्ता कौन है ? वास्तविक ज्ञान क्या है ? इस संसार में ऐसी कौन

सी वस्तु है जिसे जान लेने से व्यक्ति सब कुछ जान जाता है कुछ भी जानना उसके लिए शेष नहीं रह जाता। 'मुण्डूका उपनिषद्' के युग में यह प्रश्न उठा था कि 'ब्रह्म का क्या कारण है ? उसकी उत्पत्ति कहाँ से हुई है' ? अर्थात् ब्रह्म के रहस्य को जानना ही भारतीय दर्शन का मूल है।

'कठोपनिषद्' में यमराज के द्वारा नचिकेता को मनुष्य कौन है ? कहाँ से उसकी उत्पत्ति हुई है ? मृत्यु के उपरांत मनुष्य की क्या दशा होती है इसकी जानकारी बहुत विस्तार से दी गई है। भारतीय दर्शन में मैं को जानने का प्रयास किया गया है। आत्मा के वास्तविक स्वरूप को जानने का प्रयास भारतीय दर्शन में किया गया है। उसे सद गुरु की कृपा के माध्यम से ही जाना जा सकता है। भारतीय दार्शनिक चिंतन के अनुसार परम कल्याण को महत्व दिया गया है। लेखक मृणालकांति गंगोपाध्याय लिखते हैं कि "परम-कल्याण को सामान्यतः मोक्ष के समकक्ष माना जाता है, जो मानव-अस्तित्व का सर्वोच्च लक्ष्य है और दर्शनशास्त्र को इस लक्ष्य की प्राप्ति का एकमात्र साधन माना गया है"।^{4..} अर्थात् भारतीय दर्शन मूल रूप से अध्यात्म को महत्व देता है। भारतीय दार्शनिक चिंतन के अनुसार दर्शन का मतलब पूर्ण सत्य का दर्शन है। प्रख्यात लेखक देवीप्रसाद चट्टोपाध्याय लिखते हैं कि "यूरोपीय दर्शन का सिंहावलोकन उसके इतिहासकारों ने जिस प्रकार किया है वैसा ही भारतीय दर्शन के सम्बंध में किया जाना असम्भव नहीं तो कठिन अवश्य है। इसका कारण यह है कि भारत में दर्शन के विकास-क्रम की एक निजी विशेषता रही है"।^{5..} भारतीय दर्शन का मूल आधार भौतिकवादी नहीं है। प्रकृति एक प्रेरक है। प्राकृतिक परिवेश में विचरण करते-करते और वनों के आश्रमों में रहते हुए ऋषियों ने नरेंद्र कोहलीजी के शब्दों में 'बुद्धिजीवियों' ने परम सत्ता का साक्षात्कार किया था।

डॉक्टर राधाकृष्णन के शब्दों में "ज्ञान का आनंद मनुष्य को उपलब्ध एक पवित्रतम आनंद है। और भारतीय मस्तिष्क में इसके लिए प्रबल लालसा की ज्वाला विद्यमान है"।^{6..} प्राचीन ऋषियों की प्रवृत्ति जिज्ञासु थी। उन्होंने ज्ञान को सर्वाधिक महत्व दिया है। महान विद्वान कौटिल्य जिन्हें चाणक्य भी कहा जाता है उनका कहना है कि "दर्शन शास्त्र

(अन्विक्षिकी दर्शन) अन्य सब विषयों के लिए प्रदीप का कार्य करता है, यह समस्त कार्यों का साधन और समस्त कर्तव्यकर्मों का मार्गदर्शक है”¹⁷.. दर्शनशास्त्र में चिंतन की प्रधानता होती है। यह सभी विषयों को तार्किकता के आधार पर ग्रहण करने का विचार करता है। दर्शन के माध्यम से मनुष्य की चिंतनशीलता का विकास होता है और वह जीवन को एक नवीन दिशा दे सकता है। भारत में अध्यात्म चिंतन को सबसे ऊँचा स्थान दिया गया है। इसकी रुचि पूरे मानव समुदाय में है। भारतीय दर्शन की रुचि अकेलेपन में नहीं है। भारतीय सभ्यता को ब्राह्मणवादी सभ्यता भी कहा जाता है इसका अभिप्राय यह है कि भारत की इस सुविकासित सभ्यता का निर्माण धार्मिक आचार्यों के माध्यम से हुआ है। डॉक्टर राधाकृष्णन के अनुसार “अपने अब तक के सम्पूर्ण जीवन में भारत का एक ही उद्देश्य रहा है, वह है सत्य का संस्थापन और असत्य का प्रतिकार”¹⁸..

भारतीय दर्शन का स्वरूप वैदिक काल, रामायण और महाभारत काल या महाकाव्यात्मक काल, सूत्र काल आदि से स्पष्ट होता है।

(1) वैदिक युग →

यह वह कालखंड है जिस समय सनातन धर्म के चारों वेदों की रचना हुई थी। वैदिक काल की समय सीमा 1500 ईसा पूर्व से लेकर 600 ईसा पूर्व तक है। यह वह समय है जिस समय भारत में धीरे-धीरे आर्य संस्कृति और सभ्यता का विस्तार हुआ। वनों में शिक्षण संस्थानों का निर्माण किया गया और वहाँ जीवन के उच्च आदर्शों को स्थापित करने की शिक्षा दी गई। वेद शब्द की उत्पत्ति संस्कृत के विद धातु से हुई है जिसका अर्थ है ज्ञान। यहाँ ज्ञान से अभिप्राय है जीवन मार्ग को सुचारू रूप से संचालित करने हेतु उपयुक्त दार्शनिक ज्ञान डॉक्टर राधाकृष्णन ने दर्शन के बारे में बात करते हुए कहा कि “दर्शन एक ऐसा आध्यात्मिक ज्ञान है जो आत्मा रूपी इन्द्रिय के समक्ष सम्पूर्ण रूप में प्रकट होता है। दर्शनशास्त्र के सम्बंध में उच्चतम विजय उन्हीं व्यक्तियों को प्राप्त हो सकती है, जिन्होंने अपने अंदर आत्मा की पवित्रता को प्राप्त कर लिया है”¹⁹.. भारतीय दृष्टिकोण से दर्शन एक ऐसा ज्ञान है जिसके माध्यम से आत्मा की वास्तविकता क्या है इसकी जानकारी होती है।

(2) महाकाव्य काल →

यह वह समय है जिस समय सनातन धर्म में रामायण और महाभारत जैसे महाकाव्यों की रचना की गई थी। इनके माध्यम से एक नवीन वीरता और देवत्व का संदेश मानव समाज में फैलाने का प्रयास किया गया। राधाकृष्णनजी की मान्यता है कि बौद्धमत, जैनमत, शैवमत और वैष्णवमत की पद्धतियाँ सब इसी काल की देन हैं। 600 ईसा पूर्व से लेकर 200 ईसवीं तक के कालखंड को सर्वपल्ली राधाकृष्णन ने महाकाव्य काल कहा है। उपनिषदों की विचारधाराओं का प्रभाव बौद्ध धर्म और श्रीमद् भगवद-गीता में देखने को मिलता है।

(3) सूत्रकाल →

यह वह समय है जो महाकाव्यकाल के बाद आता है और इसकी समय सीमा 200 ईसवीं बताई गई है। इस समय सामग्रियों का पुंज बहुत ही बढ़ गया था कि दर्शनों के ज्ञान को सूक्ष्म रूप में प्रस्तुत करने की आवश्यकता अनुभव होने लगी। यही कारण है कि सूत्रों का निर्माण हुआ था। इन सूत्रों के साथ टीकाओं को भी महत्व दिया जाने लगा था क्योंकि सूत्रों की टीकाओं को समझने में बहुत ही कठिनाई होती थी। टीकाओं के प्रयोग के परिणामस्वरूप समीक्षात्मक प्रवृत्ति का विकास हुआ। पूर्ववर्ती कालों में दार्शनिक वाद-विवाद मिलते हैं, जहाँ मन ने जो कुछ उसे बताया गया उसे निष्क्रियभाव से स्वीकार नहीं किया बल्कि स्वयं भी विषय पर आक्षेप उठाकर और उनका उत्तर देते हुए उनका विवेचन किया।

(4) टिकाकाल →

यह काल ईसा की दूसरी शताब्दी से शुरू होता है। इस काल और इसके पूर्व काल के बीच में कोई स्पष्ट विभाजक रेखा नहीं खिंची जा सकती। फिर भी इसी काल में बड़े-बड़े विचारकों यथा कुमारिल, शंकर, श्रीधर, रामानुज, माध्व, वाचस्पति, उदयन, भास्कर, जयंत, विज्ञानभिक्षु और रघुनाथ आदि का नाम सुनाई देता है। इस समय का साहित्य शीघ्र ही विवादों के घेरे में आ जाता है।

भारतीय दर्शन का वर्गीकरण इस प्रकार है -

1) जैन दर्शन :

जैन धर्म के प्रवर्तक महावीर जैन को माना जाता है जो जैन धर्म के चौबीसवें तिर्थंकर माने जाते हैं। ऐसा माना जाता है कि जैन मत का प्रादुर्भाव बौद्ध धर्म से काफी पहले हो चुका था। जैन शब्द की उत्पत्ति जिन शब्द से हुई है। जिस शब्द का शाब्दिक अर्थ है विजयी, वह व्यक्ति जिसने अपने आवेगों को पूर्ण रूपेण अपने वश में कर लिया है। और स्वयं के इंद्रियों को अपने वश में कर लिया है। डॉक्टर मृणालकांति गोंगोपाध्याय लिखते हैं कि "जिन शब्द का प्रयोग सामान्यतः वर्धमान महावीर के लिए किया जाता है जो बुद्ध के समकालीन थे। किंतु उनसे कुछ पहले पैदा हुए थे और बुद्ध की भाँति शासक वर्ग में जन्मे थे। उन्होंने अपने पूर्ववर्ती के सिद्धांतों का प्रतिपादन किया"।¹⁰.. जैन धर्म वेदों की प्रामाणिकता को स्वीकार नहीं करता है। यह दर्शन ब्राह्मणवाद का विरोधी है। जैन धर्म और दर्शन क्षणिकवाद का विरोध करता है। यह आत्मा एवं पदार्थ जैसी स्थायी सत्ता को स्वीकार करता है। जैन धर्म का विभाजन प्रथम शताब्दी ईसवीं में श्वेतांबर और दिगम्बर आदि दो भागों में हुआ था। श्वेतांबर उन्हें कहा जाता है जो सफ़ेद वस्त्र धारण किया करते थे और दिगम्बर उन्हें कहा जाता है जो आकाश को ही अपना वस्त्र माना करते थे या उलंग रहते थे। इन दोनों सम्प्रदायों की विचारधाराओं में उतनी भिन्नता नहीं है जितनी कि उनकी उत्सवों के क्रिया-कलापों में है। आधारभूत दार्शनिक सिद्धांत दोनों में समान देखने को मिलती है। जैन परम्परा के अनुसार आरम्भ में केवल दो ही प्रकार के पवित्र ग्रंथ थे -चौदह पूर्व और ग्यारह अंग (जिन्हें आचार, सूत्रकृत, स्थान इत्यादि कहा जाता है)। इनमे से पहले प्रकार के सभी ग्रंथ विलुप्त हो चुके हैं। बाद वाले जो बचे रहे वे ही जैन धर्म के प्राचीनतम ग्रंथ है। इनको ही श्वेतांबर सम्प्रदाय वाले प्रामाणिक ग्रंथ मानते है। दिगम्बर सम्प्रदायों की मान्यता है कि ये भी नष्ट हो गए थे और जो उनके नाम से अब चलते हैं वे भी मिथ्या हैं।

2) सांख्य दर्शन :

इस दर्शन को भारतीय दर्शन में सर्वाधिक प्राचीन माना जाता है। महाभारत, चरक संहिता मनुस्मृति और पुराणों में जहाँ तहाँ दार्शनिक चर्चा है सांख्य का उल्लेख किया गया है। किसी समय यह अत्यंत प्रभावशाली दर्शन रहा होगा। किंतु धीरे-धीरे इसकी महिमा कम होती गई और इसका प्रचलन समाप्त हो गया। इस दर्शन का नाम सांख्य क्यों पड़ा इसका कोई संतोषजनक समाधान नहीं मिलता। इसकी उत्पत्ति के बारे में भी विद्वानों में मतभेद है। इस तथ्य को अस्वीकार करने का कोई आधार नहीं है कि उपनिषदों में विशेष रूप से परवर्ती उपनिषदों में ऐसे सिद्धांत के संदर्भ मिलते हैं जिन्हें सांख्य योग कहा जाता है। एक ओर जहाँ कुछ विद्वानों की मान्यता है कि इस प्रणाली की उत्पत्ति स्वतंत्र रूप से हुई है इतना ही नहीं वह बुद्ध पूर्व काल की भी है और उपनिषदों में भी इसकी पूर्व मान्यता मिलती है वहीं कुछ विद्वान ऐसे भी हैं जो यह मानते हैं कि इस दर्शन का विकास प्राचीन ग्रंथों से हुआ है जिनमें पहले से ही इसके बीज विद्यमान थे। यह भी कहा जाता है कि सांख्य दर्शन का मूल स्वरूप लुप्त हो चुका है। परवर्ती ग्रंथों में इसका जो रूप उपलब्ध है वह संशोधित रूप है।

3) योग दर्शन :

सामान्यतः योग दर्शन को सांख्य से जुड़ा हुआ माना जाता है। योग सांख्य के ज्ञान के सिद्धांत एवं तत्व मीमांसा के पच्चीस तत्वों को पूर्ण रूपेण स्वीकार करता है। योग में ईश्वर की स्पष्ट स्वीकृति है। अतः योग को सेश्वर सांख्य भी कहा जाता है। ऐसा कहा जाता है कि ये दोनों दर्शन एक-दूसरे के पूरक हैं। सांख्य सिद्धांत है तो योग उसका व्यवहारिक पक्ष है। दूसरी ओर यह भी कहा जाता है कि योग को सांख्य से अलग करना ही उचित है। सांख्य की तत्व मीमांसा किसी भी प्रकार योग दर्शन के लिए आंतरिक नहीं है। योग का अर्थ है कुछ विशेष क्रियाएँ जिनके माध्यम से असाधारण शक्तियाँ प्राप्त की जा सकती हैं। योग शब्द का अभिप्राय है आत्मा और परमात्मा का सम्पर्क। योग की क्रियाएँ बहुत प्राचीन हैं। भारतीय चिंतन के अनुसार भगवान शिव को आदि योगी कहा जाता है। भारत में सम्भव है कि यह तीन सहस्राब्दी पूर्व भी प्रचलित था। भारतीय दर्शन की लगभग सभी

प्रणालियों में योग को महत्व दिया गया है। अतः यह कहना अधिक उपयुक्त होगा कि योग कोई विशिष्ट दर्शन नहीं है बल्कि यह प्राचीन आचार है।

4) मीमांसा दर्शन :

यह भारतीय दर्शन की एक ऐसी प्रणाली है जो भारतीय दर्शन से घनिष्ठ रूप से जुड़ी हुई है। मीमांसा का शाब्दिक अर्थ है विवाद का समाधान करना। या विमर्श के पश्चात् किसी अंतिम निष्कर्ष पर पहुँचना। मीमांसा का सम्बंध वर्णित अनुष्ठानों की सही व्याख्या करने, वैदिक आदेशों में दिखाई पड़ने वाले अंतर्विरोधों का समाधान करने तथा उनके सही निहितार्थों को स्पष्ट करने में है। मीमांसावादियों के लिए वेदों की प्रामाणिकता ही सर्वोपरि है वे श्रमपूर्वक वेदों की अमोघता की रक्षा करते हैं। लेकिन इसके लिए उन्हें क्रमशः अन्य समस्याओं का भी सामना करना पड़ता है। वाक्य की व्याख्या करने के लिए उन्हें शब्दों के स्वरूप, उनके अर्थों तथा उनके पारस्परिक सम्बंध विकसित करने पड़ते हैं। न्याय -वैशेषिक वेदों की प्रामाणिकता यह कहकर स्वीकार करते हैं कि इनमें ईश्वर के वचन साकार हुए हैं।

5) वेदांत दर्शन :

वेदांत शब्द का शाब्दिक अर्थ है वेदों का अंत। अर्थात् उपनिषद जो वेद साहित्य के अंतिम भाग हैं। उपनिषद शब्द का अर्थ होता है गुरु के पास बैठकर ज्ञान की प्राप्ति करना। प्राचीन काल में सवर्ण शिष्य गुरु-गृह में जाकर उनके सानिध्य में जो ज्ञान प्राप्त करते थे कालांतर में उसी ज्ञान को जिन ग्रंथों के रूप में लिपिबद्ध किया गया उन्हीं को उपनिषदों की संज्ञा दी गई है। उपनिषदों में वर्णित सिद्धांतों के आधार पर एक सुसंगत दर्शन विकसित करने का सर्वप्रथम प्रयास बादरायण ने ब्रह्मसूत्रों की रचना के माध्यम से किया। इसे वेदांत सूत्र के नाम से भी जाना जाता है। उपनिषदों में परम सत्ता को ब्रह्म कहा गया है। इस ग्रंथ के पहले अध्याय में परम सत्ता के रूप में ब्रह्म का विवेचन किया गया है। दूसरे अध्याय में प्रतिपक्षी दार्शनिक प्रणालियों के द्वारा उठाई गई आपत्तियों का विवेचन है तीसरे में ब्रह्म विद्या को प्राप्त करने के साधन की विवेचना की गई है। और चौथे में ब्रह्म विद्या के फल के अध्ययन की विवेचना की गई है। वेदांत का प्राचीनतम एवं प्रमुखतम सम्प्रदाय अद्वैत वेदांत है। यद्यपि यह शंकराचार्य के नाम से विशेष रूप से जुड़ा हुआ है। परंतु शंकराचार्य से पूर्व भी यह प्रचलित था। इसके आरम्भिक प्रतिपादकों में गौडपाद सबसे प्रमुख हैं। भले ही

उन्होंने ब्रह्मसूत्र का भाष्य नहीं लिखा किंतु एक स्वतंत्र ग्रंथ 'माण्डूक्यकारिका' की रचना की थी। यह चार प्रकरणों में विभाजित है। जो इस प्रकार है- a. आगम (धर्मग्रंथ), b. वैतथ्य (आयथार्थता), c. अद्वैद (एकता), d. अलातशांति (जलते हुए कोयले का शमन)

गोरांग महाप्रभु के दार्शनिक सिद्धांत को अचित्य भेदाभेदवाद कहा जाता है। जीव गोस्वामी ने अपनी 'सर्वसंवादिनी' नामक रचना (16वीं शताब्दी) तथा बलदेव विद्याभूषण ने 18 वीं शताब्दी में 'ब्रह्मसूत्र गोविंदभाष्य' नामक अपनी टिका में इस सिद्धांत को तार्किक रूप से स्थापित करने का प्रयास किया है। वे शंकर के माया के सिद्धांत को स्वीकार नहीं करते हैं। वे संसार की सत्ता को स्वीकार करते हैं। उनका तर्क है कि जीवात्मा न तो परमात्मा से पूर्ण रूप से भिन्न है और न ही वह अभिन्न है। जीव और संसार ब्रह्म की शक्तियाँ मात्र हैं और ब्रह्म शक्तिमान है। शक्तिमान और उसकी शक्तियाँ भिन्न भी हैं और अभिन्न भी हैं। स्वामीजी के दृष्टिकोण से देखा जाए तो वे कहते हैं कि "वेदांत दर्शन एक के बाद एक सोपान को आधार बनाकर आगे बढ़ा है, और हम तीसरे सोपान का अतिक्रमण करते हुए और आगे नहीं बढ़ सकते, कारण एकत्व के बाद और आगे नहीं जा सकते। जिससे जगत का सब कुछ उत्पन्न हुआ है उस पूर्ण एक स्वरूप की धारणा से और आगे नहीं बढ़ सकते। इन तीन सोपानों में पहले सोपान से शुरू करना ही अच्छा है। उस पहले सोपान के विषय में चिंतन पूर्वक अच्छी प्रकार समझने से दूसरा सोपान आसानी से खुल जाएगा।"¹¹..

6) न्याय दर्शन :

इसका एक दीर्घ एवं रोचक इतिहास रहा है। यह बीस शताब्दियों तक लगभग निर्बाध रूप से विकसित और पल्लवित होता रहा है। भारतीय दार्शनिक परम्परा में इसे प्रायः सम्मान का स्थान मिला है। इसके प्रभाव का अनुमान इसी बात से लगाया जा सकता है कि यह न केवल दार्शनिक विवेचना में अपितु स्मृति, काव्य एवं व्याकरण जैसी अध्ययन की अन्य शाखाओं में भी इस दर्शन की कार्य पद्धति एवं शब्दावली का प्रयोग होता है। ऐसी भी धारणा है कि न्याय दर्शन की उत्पत्ति सार्वजनिक वाद-विवाद की कला और पद्धति के अध्ययन से हुई है। सार्वजनिक वाद-विवादों का प्रचलन इस देश में प्राचीन काल से रहा है।

न्यायसूत्र में उपलब्ध आंतरिक प्रमाण इस परिकल्पना का समर्थन करते हुए प्रतीत होते हैं। कारण कि यह काफ़ी सीमा तक सार्वजनिक वाद-विवाद की तकनीक से सम्बंधित एक प्रबंध है। वाद-विवाद में रुचि ही तो इस बात की व्याख्या नहीं कर सकती कि अन्य समस्याओं जैसे पारम्परिक आस्था के तत्व एवं एक मूलतः अनुभवात्मक ज्ञान मीमांसा और सत्ता मीमांसा से इस दर्शन का सरोकार कैसे हुआ।

7) वैशेषिक दर्शन :

सामान्य मान्यता के अनुसार वैशेषिक दर्शन का यह नाम इस कारण पड़ा कि यह विशेष नामक पदार्थ को मानता है। किंतु एक चीनी परम्परा के अनुसार वैशेषिक नाम पड़ने का कारण इसका अन्य दार्शनिक प्रणालियों, विशेषकर सांख्य दर्शन से श्रेष्ठ अथवा विशिष्ट होना है। सांख्य दर्शन पहले ही चीन पहुँच चुका था। कुछ लोगों की यह भी मान्यता है कि विशेष का तात्पर्य अंतर है और इस दर्शन का वैशेषिक नाम इस कारण पड़ा कि यह संसार के मूल में एकत्व के स्थान पर वैविध्य या बहुलता को मानता है। इस दर्शन का मूल ग्रंथ 'वैशेषिकसूत्र' है और कणाद ऋषि को इसका प्रवर्तक माना जाता है। वैशेषिक दर्शन की मूल स्थापना यह है कि ज्ञेय संसार की मूलतः वस्तुगत एवं वास्तविक सत्ता है और इसके अनुयायी इसकी बुद्धिसंगत व्याख्या देने का प्रयास करते हैं।

8) लोकायत दर्शन :

लोकायत या चार्वाक दर्शन प्राचीन भारतीय भौतिकवाद का प्रतिनिधित्व करता है। यह परम्परा बहुत प्राचीन है, कदाचित्त उतनी ही प्राचीन है जितना कि भारतीय दर्शन है। भौतिकवादी प्रवृत्ति के बीज उपनिषदों में भी देखने को मिलते हैं। उदाहरण के लिए श्वेताश्वेतेश्वर उपनिषद के आरम्भ में ऐसी अनेक धारणाओं की गिनती की गई हैं जो संसार की उत्पत्ति का प्रयास करती हैं। इनमें से एक के अनुसार जगत का मूल कारण ('योनि') भूत अथवा पदार्थ है। बौद्ध पिटकों में लोकायत के उल्लेख के साथ ही साथ आत्मा को शरीर के समरूप ही माना गया है। प्रसिद्ध विद्वान कौटिल्य के अर्थशास्त्र में भी सांख्य और योग के साथ साथ लोकायत दर्शन पर भी विचार किया गया है। लोकायत से तात्पर्य 'जनसामान्य में प्रचलित' से हो सकता है। ऐसा कहा जाता है कि भौतिकवादी धारणाएँ जनता को आकर्षित करती हैं। आयात का अर्थ होता है आधार या आयतन अर्थात् इस मूढ

एवं लौकिक संसार का आधार। एक अन्य मान्यता के अनुसार लोकायत एक तकनीकी शब्द है जिसका तात्पर्य विवाद, वितंडा एवं कुतर्क का विज्ञान है। चार्वाक शब्द की व्याख्याओं के सम्बंध में भी अनेक कल्पनाएँ की गई हैं। कहा जाता है कि चार्वाक चारु (मिष्टभाषी) का संक्षिप्त रूप है। बहर्स्पत्य नाम से अभिप्राय यह है कि इस दर्शन के प्रणेता बृहस्पति थे। किंतु परम्परा से यह माना जाता रहा है कि बृहस्पति देवताओं के गुरु माने जाते हैं। एक उपनिषद में कहा गया है कि एक बार देवताओं के गुरु ने असुरों को नास्तिक का उपदेश दिया था। भारतीय दर्शन में उपनिषदों की महत्वपूर्ण भूमिका है। उपनिषद वेदों के अंतिम भाग हैं। इनमें वैदिक शिक्षा का सार तत्व निहित है इसीलिए इन्हें वेदांत की संज्ञा दी गई है। भारतीय दर्शनशास्त्र के प्रख्यात विद्वान डॉक्टर सर्वपल्ली राधाकृष्णन लिखते हैं कि “उपनिषदों की शिक्षा का विषय क्या है, इसका निर्णय करना सरल नहीं है। उपनिषदों के आधुनिक विद्यार्थी अपने किसी न किसी पूर्व निर्धारित सिद्धांत के आधार पर इनका अध्ययन करते हैं। मनुष्यों को अपने स्वतंत्र निर्णय के ऊपर भरोसा करने की इतनी कम आदत है कि इसके लिए वे किसी प्रमाण एवं परम्परा की शरण लेते हैं”।^{12..}

9) अद्वैतवाद :

भारतवर्ष के पूर्व राष्ट्रपति डॉ सर्वपल्ली राधाकृष्णन की मान्यता है कि “यह बात कि वैदिक सूक्तों के निर्माण के दिनों में केवल अव्यवस्थित कल्पनाओं एवं भ्रांतियों का ही अस्तित्व नहीं था बल्कि गम्भीर विचार एवं जिज्ञासा का भाव भी वर्तमान था। इस प्रकार प्रमाणित होती है कि स्थान-स्थान पर प्रश्नात्मक प्रवृत्ति मिलती हैं। अनेक देवताओं की कल्पना करने की आवश्यकता इसलिए अनुभव हुई, क्योंकि मानवीय मस्तिष्क के अंदर एक स्वभाविक प्रवृत्ति किसी विषय को स्वयं खोजकर समझने की ओर होती है। रात के समय सूर्य कहाँ रहता है ? सूर्य नीचे क्यों नहीं गिर पड़ता ? दिन के समय तारे कहाँ गायब हो जाते हैं ? दिन और रात दोनों में कौन पहले और कौन पीछे है ? वायु कहाँ से आती है और कहाँ चली जाती है ? ये इस प्रकार के प्रश्न और श्रद्धा युक्त विस्मय तथा अचम्भे की बातें हैं जो समूचे दर्शनशास्त्र एवं भौतिक विज्ञान को जन्म देती हैं। मानवीय हृदय की अभिलाषा बहुदेववाद से संतुष्ट न हो सकी। आशंका उठी कि कौन सा देव यथार्थ है। किस विशिष्ट

देवता के लिए अपने मानसिक यज्ञ में आहुति दें”।¹³.. मानव के मन में निरंतर यह विचार आता रहता है कि प्रकृति की विभिन्न घटनाएँ जो घटती हैं इसका नियंत्रक कौन है। जब सूर्य चंद्र या तारे अदृश्य होते हैं तो वे कहाँ लुप्त हो जाते हैं ? वह कौन है जिसने इस सुंदर प्रकृति का निर्माण किया है ? एक तरफ़ से कहा जाए तो इस संसार का जो अदभुत रहस्य है उसे जानने के लिए ही दर्शनशास्त्र की उत्पत्ति हुई है। ईश्वर या भगवान दो नहीं है बल्कि वह एक ही है। ऐसा कहा जाता है कि साधना या तपस्या करते हुए भक्त के जीवन में एक ऐसा समय आता है जब वह इस बात का अनुभव करता है कि साधना या तपस्या के जितने मार्ग हैं वे सब एक ही देवता या ईश्वर के पास भक्त को पहुँचाते हैं। एक समय ऐसा आया जब देवकन्या की, देवपुत्र की पूजा की परम्परा की शुरुआत हुई। किसी देवता के साथ देवता का पति-पत्नी सम्बंध भी दर्शाया जाने लगा। एक-एक शक्ति के प्रदर्शन के लिए एक-एक देवता को हिंदू चिंतन में महत्व दिया जाने लगा। यहाँ यह बात ध्यान देने लायक है कि इस प्रकार की स्थिति वैदिक ऋषियों की उदारता के कारण ही सम्भव हो सकी। क्योंकि सनातन चिंतन के अनुसार अगर किसी व्यक्ति को ऐसा प्रतीत होता है कि उसका आराध्य रूप श्रेष्ठ है तो दूसरे के आराध्य रूप को भी वह नकार नहीं सकता।

वैदिक धर्म की यह भी मान्यता है कि ईश्वर एक है लेकिन उसे अलग-अलग नामों से पुकारा जाता है। जर्मनी के एक प्रख्यात दार्शनिक मैस्कमूलर का कहना है कि “ऋग्वेदसंहिता के संग्रह की समाप्ति का चाहे जो भी काल रहा हो, उस काल से पहले इस विचार के विश्वास की जड़ जम गई थी कि एक ही अद्वितीय सत्ता है, जो न पुरुष है न स्त्री, एक ऐसी सत्ता जो दैहिक एवं मानुषिक प्रकृति सब अवस्थाओं और बंधनों से उन्मुक्त और बहुत ऊँची श्रेणी की है किंतु तो भी वहीं सत्ता इंद्र, अग्नि मतरिश्वा और यहाँ तक कि प्रजापति अर्थात् प्राणी मात्र का स्वामी, आदि विविध नामों से पुकारी जाती है”। आलोच्य पंक्तियों में यहीं बताया गया है कि एक ही ईश्वर की ही बात की गई है। ईश्वर न तो स्त्री है और न ही पुरुष है।

10) बौद्ध दर्शन :

प्रख्यात विद्वान और भारतीय दार्शनिक डॉक्टर सर्वपल्ली राधाकृष्णन ने प्रारम्भिक बौद्ध मत के बारे में लिखा है कि “इसमें कोई संदेह नहीं है कि प्रारम्भिक बौद्धदर्शन दर्शनशास्त्र के इतिहास में अत्यंत मौलिक होने के कारण अपना एक विशेष स्थान रखता है। अपने मूलभूत विचारों एवं सार रूप में यह उन्नीसवीं शताब्दी के उन्नत वैज्ञानिक विचारों के साथ अदभुत रूप में मिलता-जुलता है।...”¹⁴.. आगे वे बौद्ध विचारधारा के विकास के बारे में कहते हैं कि “बौद्ध विचारधारा में भारत में भी एकहज़ार वर्ष से अधिक समय तक निरंतर विकास दिखाई देता है। रीज़ डेविड्स का कहना है कि ज्यों-ज्यों शताब्दियाँ गुज़रती गईं, बौद्धधर्म की प्रायः प्रत्येक पुस्तक में स्वल्प मात्रा में परिवर्तन होता चला गया। बुद्ध की मृत्यु के पश्चात दूसरी शताब्दी में बौद्ध धर्म के सिद्धांतों में कम से कम अठारह परिवर्तन तो स्पष्ट रूप से मिलते हैं। विचारों के राज्य में जीवन का अर्थ है परिवर्तन। सम्पूर्ण विकास को इसी एक युग के अंदर नहीं डाल सकते”¹⁵..

भारतीय दार्शनिक चिंतन में सृष्टि विज्ञान, कर्म का सिद्धांत, यथार्थ का स्वरूप आदि की बड़ी भूमिका रही है। जहाँ तक सृष्टि विज्ञान की बात है इसमें भारत के विद्वानों ने इस विषय पर विश्व के विद्वानों की भाँति ही इस ब्रह्मांड के निर्माण के मूलभूत तत्व को तलाशने का प्रयास किया। कर्म के सिद्धांत के अंतर्गत भारतीय विद्वान इस बात पर विचार करते हैं कि इस संसार में व्यक्ति का जन्म उसके कर्म के आधार पर ही होता है। हिंदू चिंतन के अनुसार व्यक्ति जिस प्रकार का कर्म करता है उसका जन्म उसी प्रकार निर्धारित होता है। भारतीय विद्वानों ने मानव के यथार्थ स्वरूप को जानने पर बल दिया गया है। इसके अंतर्गत यह कहा जाता है आत्मा ही मानव का वास्तविक स्वरूप है। आर्यों की चिंतन प्रणाली में जीवात्मा को महत्व दिया गया है। जीवात्मा का निर्माण पाँच भौतिक तत्वों से मिलकर बनता है। इसका मूल लक्ष्य परम तत्व का साक्षात्कार है। प्रज्ञा की दृष्टि के अंतर्गत इस बात पर विचार किया जाता है कि इस संसार में विषयी एवं विषय क्या हैं। कर्म और पुनर्जन्म की जहाँ तक बात है इस सिद्धांत के अंतर्गत उस तत्व पर विचार किया जाता है कि व्यक्ति

का अगला जन्म उसके द्वारा वर्तमान जन्म के किए गए कर्मों के आधार पर ही निर्धारित होगा।

i) सृष्टि विज्ञान →

वैदिक विचारक संसार की सृष्टि को लेकर उदास नहीं थे। जिस प्रकार से यूनानी विचारकों ने जल, वायु और अग्नि को मौलिक तत्व का रूप माना था उसी प्रकार से भारतीय विचारकों ने भी इन्हें अर्थात् अग्नि, जल, वायु आदि को इस सृष्टि के मूल तत्व के रूप में स्वीकार किया है। भारतीय विचारकों का भी मानना था कि इन वस्तुओं के सहयोग से इस सृष्टि का निर्माण हुआ है। ऐसा भी कहा गया है कि जल की अवस्था से उन्नत होकर इस जगत का विकास समय, संवत्सर अथवा वर्ष, इच्छा या काम एवं बुद्धिरूप पुरुष तथा तप की ऊष्मा की शक्ति द्वारा हुआ। कहीं कहीं स्वयं जल की उत्पत्ति रात्रि रूपी अंधकार अथवा अविश्रृंखला की अवस्था वायु से हुई है। असीम से ही विश्वशक्ति की उत्पत्ति हुई है। सृष्टि की उत्पत्ति के विषय का एक अत्यंत उन्नत सिद्धांत पाया जाता है। प्रारम्भ में न तो सत था और न ही असत। सत भी उस समय अपने अभिव्यक्त रूप में नहीं था। केवल इसलिए उसे अस्त नहीं कह सकते कि वह एक निश्चित सत्ता है जिससे सब सत पदार्थ आविर्भूत हुए। संसार में जितनी भी धार्मिक उपासना पद्धतियाँ हैं वे सब उस एक परमब्रह्म को पाने के लिए ही हैं। यह नाद ब्रह्म है, अकाल्पनिक है। मनुष्य की वाणी उस परमब्रह्म के रूप का वर्णन नहीं कर सकती।

ii) कर्म का सिद्धांत →

संसार का कोई भी प्राणी हो वह एक भी क्षण कर्म से अलग नहीं हो सकता है। स्वयं भगवान श्री कृष्ण भी लगातार कर्म करते रहते हैं। वे इसलिए कर्म करते हैं क्योंकि वे संसार से प्रेम करते हैं। संसार के प्रति उनका यह प्रेम सात्विक है और साथ ही अनास्त भी है। श्रीमद् भगवद् गीता में भगवान ने परिणाम या फल की अभिलाषा छोड़ते हुए निरंतर कर्म करने का उपदेश दिया है क्योंकि कर्म पर ही मनुष्य का अधिकार है उसके फल पर नहीं। कहा जाता है कि कोई भी कर्म चाहे वह अच्छा हो या बुरा फल उत्पन्न न करते हुए वह कभी भी समाप्त नहीं होगा। स्वामी विवेकानंद भी इस बात को स्वीकार करते हैं। सनातन चिंतन के अनुसार कहा जाता है कि देह तो कर्म करने का ही यंत्र मात्र है। मनुष्य को अपने

कर्मों को भगवान के प्रति समर्पित करना चाहिए। भगवान श्री कृष्ण ने श्रीमद् भगवत गीता में यह बताया है कि मानव का अधिकार कर्म करने पर ही है उसके फल पर कभी नहीं। कभी कभी यह देखा जाता है कि कोई व्यक्ति जन्म से ही अत्यंत सुखी है तो कोई अत्यंत ही दुखी है और वह कष्ट भोगता चला जा रहा है। यह देखकर सामान्य व्यक्ति के मन में यह सवाल आ सकता है कि क्या यह ईश्वर का पक्षपात है ? लेकिन वास्तव में बात यह नहीं है वास्तव में यह उन व्यक्तियों के पूर्व जन्म के कर्मों का ही फल है या परिणाम है।

iii) यथार्थ का स्वरूप →

भारतीय चिंतन में सदैव यथार्थ के स्वरूप को जानने का प्रयास किया गया है। अगर वैदिक ऋषियों की बात की जाए तो डॉक्टर सर्वपल्ली राधाकृष्णन के शब्दों में यह कहा जा सकता है कि “परमसत्य का स्वरूप क्या है, इस प्रश्न को हल करने के लिए उपनिषदकारों ने वैदिक ऋषियों की अनात्मदृष्टि के साथ अध्यात्मदृष्टि को जोड़ने का यत्न किया। वैदिक सूक्त जिस उच्चतम विचार तक पहुँचे थे, उनके अनुसार एकमात्र सत्ता यथार्थ थी। जो नानाविध सत्ता में अपने को व्यक्त करती है। उपनिषदों में वहाँ इसी निष्कर्ष का समर्थन किया गया है जहाँ इस समस्या के समाधान के लिए उन्होंने आत्मा के स्वरूप का दार्शनिक दृष्टिकोण से विश्लेषण किया है। ऋग्वेद के 10,16,3 में आत्मा शब्द का अर्थ प्राण अथवा जीवनाधार (आध्यात्मिक सत्व) बताया गया है। शनैः शनैः आगे चलकर इसका अर्थ आत्मा हो गया। वास्तविक अहं अर्थात् आत्मा की सैद्धांतिक कल्पना की कहीं भी स्पष्ट रूप में पूरे ब्यौरे के साथ व्याख्या नहीं की गई और न ही इससे सम्बंधित बिखरे-बिखरे कथनों को किसी एक स्थान पर संगत रूप में रखा गया है। गुरु प्रजापति और उसके शिष्य इंद्र के मध्य संवाद में जो छान्दोग्य उपनिषद में आता है अहं या आत्मा की परिभाषा के विषय में प्रगतिशील विकास मिलता है। जिसे चार श्रेणियों में विभक्त किया गया है। (1) शारीरिक आत्मा, (2) अनुभविक आत्मा, (3) सर्वातिशयी प्रच्छन्न आत्मा और (4) परम आत्मा। प्रजापति संवाद को प्रारम्भ करते हुए कुछ सामान्य लक्षणों का वर्णन करता है जोकि यथार्थ आत्मा के अंदर पाए जाने चाहिए, आत्मा वह है जो पाप से मुक्त है, वृद्धावस्था से रहित है, रोग एवं शोक से रहित है, भूख और प्यास से रहित है, जो किसी वस्तु की इच्छा नहीं

करती”।¹⁶.. आत्मा परम सत्य का रूप है। भारतीय चिंतन में प्राचीन मुनि-ऋषियों ने यह अनुभव किया कि साधारण तौर पर आत्मा के वास्तविक स्वरूप का बोध नहीं हो सकता वह एक अजर, अमर तत्व है जिसे केवल तपस्या के द्वारा ही जाना जा सकता है।

iv) जीवात्मा →

भारतीय दर्शन में आर्यों की आध्यात्मिक दृष्टि में जीवात्मा को भी महत्व दिया गया है। उपनिषदों के अनुसार जीवात्मा को परम ब्रह्म के अधीन माना गया है। जीवात्मा अपने भीतर जो अंतरात्मा है उसकी प्राप्ति हेतु सदैव प्रयत्नशील है। परमात्मा को प्राप्त करने की शक्ति जीवात्मा में ही पायी जाती है। तैत्तिरीय उपनिषद के अनुसार ‘विश्व के अनेक अवयव जीवात्मा के स्वरूप में दृष्टिगोचर होते हैं’। ठीक इसी प्रकार अगर छान्दोग्य उपनिषद की बात की जाए तो उसमें यह कहा गया है कि ‘अग्नि, जल और पृथ्वी मिलकर अनंत सत्ता के तत्व को साथ लेकर जीवात्मा की सृष्टि करते हैं’। ‘मानव जीवन ही एक ऐसा जीवन है जिस जीवन में यथार्थ तत्व का साक्षात्कार किया जा सकता है क्योंकि उसी परम तत्व से मिलने के लिए ही यह मानव जीवन की प्राप्ति हुई है। यहीं इस जीवन का मूल लक्ष्य भी है। डॉक्टर राधाकृष्णन लिखते हैं कि “यथार्थसत्ता की विविध अवस्थाओं के परस्पर मिलने का लक्ष्य बिंदु मानव है। शरीरस्थ प्राण सांसारिक वायु के अनुरूप है। मानस आकाश के अनुरूप, अर्थात् मानव का मन संसार के आकाश (ईथर) के अनुरूप है और ठोस मूर्त रूप शरीर भौतिक अवयवों के अनुरूप है। एक दैविय अंश है जिसे आनंददायक चेतना के नाम से पुकारते हैं, अर्थात् आनंद की अवस्था जिसके द्वारा विशेष क्षणों में यह परम सत्ता के साथ साक्षात् घनिष्ठ सम्बंध में संयुक्त हो जाता है सांत आत्मा अथवा शरीरधारी आत्मा वह आत्मा है जिसके साथ इंद्रियों एवं मन की समानता है।”¹⁷..

v) प्रज्ञा की अंतर्दृष्टि →

मानव बुद्धि का लक्ष्य एक ऐसे वस्तु की तलाश करना है जिसमें विषयी और विषय दोनों एक साथ जुड़े हुए हों। इस प्रकार के ऐक्य जो घटक हैं उन्हीं का पता लगाना ही दार्शनिक दृष्टिकोण का मूल उद्देश्य है। कभी कभी मानव की बुद्धि उस पूर्णता को ग्रहण करने में असफल हो जाती है। बुद्धि एक ऐसे परिवेश में जीने लगती है जिसमें अनेकों

रुढ़ीवादी विचारों से वह प्रभावित होने लगती है परिणाम स्वरूप व्यक्ति का मन उस परम सत्ता तक पहुँचने में असफल रह जाता है। उपनिषदों में कहा गया है कि विचार के द्वारा उस परम सत्ता तक नहीं पहुँचा जा सकता। सामान्य बुद्धि के माध्यम से उस परम सत्ता को नहीं जाना जा सकता क्योंकि वह बुद्धि की सीमा से परे है, वह स्वयं किसी भी नियम के अधीन नहीं है, परंतु इस संसार के सारे नियम उसके अधीन है। परम सत्ता या ब्रह्म में कोई परिवर्तन नहीं होता। उस परम सत्ता का वर्णन अलंकारों के माध्यम से नहीं किया जा सकता है। भगवान में आत्म समर्पण करने से और निरंतर भगवान का स्मरण करने से आंतरिक दृष्टि खुलती है और मनुष्य को परम ब्रह्म का साक्षात्कार होता है। कहा जाता है कि योग के माध्यम से भी उस परम सत्ता का साक्षात्कार मिल सकता है।

डॉक्टर राधाकृष्णन ने लिखा है कि “उपनिषदों के अनुसार एक उच्चतम शक्ति है जो हमें इस केंद्रीय आध्यात्मिक सत्ता को ग्रहण करने योग्य बनाती है। आत्मिक विषयों का विवेचन आध्यात्मिक दृष्टि से ही होना चाहिए। योग की प्रक्रिया एक क्रियात्मक अनुशासन है जो इसकी प्राप्ति के मार्ग की ओर निर्देश करती है। मनुष्य के अंदर दैवीय अंतर्दृष्टि की योग्यता है, जिसे यौगिक अंतर्दृष्टि कहते हैं जिसके द्वारा वह बुद्धिगत भेदों से ऊपर उठकर तर्क की पहेली को बुझा देता है। विशिष्ट आत्माएँ विचार के उच्च शिखर पर पहुँचकर आभ्यांतर निरीक्षण द्वारा परमार्थसत्ता को पा लेती हैं। इस आध्यात्मिक सिद्धि के द्वारा जो श्रवणगोचर नहीं था, वह श्रवणगोचर हो जाता है, और जो अज्ञात था ज्ञातकोटि में आ जाता है, जो अप्रत्यक्ष था, वह प्रत्यक्ष हो जाता है”¹⁸.. यानी भारतीय दार्शनिक चिंतन में योग की भूमिका है। योग आत्मा और परमात्मा के मेल का एक माध्यम है। यह एक उच्च आध्यात्मिक प्रक्रिया है। ये प्रक्रियाएँ व्यक्ति को किसी भी प्रकार की तार्किक विचारधारा से ऊपर उठकर उच्चकोटि के आध्यात्मिक जीवन जीने की प्रेरणाएँ देती हैं। यह एक ऐसी आध्यात्मिक सिद्धि है जिसकी प्राप्ति के बाद बुद्धि की सारी जटिलताएँ समाप्त हो जाती हैं क्योंकि तब मनुष्य को उस तत्व के दर्शन होते हैं जिसका वर्णन मानव की मौखिक और लिखित भाषा के माध्यम से नहीं किया सकता। उसे तो केवल अंतर्दृष्टि के खुलने के माध्यम से ही जाना जा सकता है।

भारतीय चिंतन में ईश्वर की प्राप्ति के लिए शिशु के समान सरल स्वभाव की आवश्यकता पर बल दिया गया है। कदाचित यहीं कारण है श्री रामकृष्ण में शिशु स्वभाव था। राधाकृष्णन ने लिखा है कि “बिना एक छोटे बच्चे का रूप धारण किए कोई मनुष्य ईश्वर के राज्य में प्रवेश नहीं कर सकेगा”¹⁹.. इन पंक्तियों के द्वारा लेखक ने यहीं बताने का प्रयास किया है कि किसी भी व्यक्ति को भगवान की प्राप्ति हेतु सर्वप्रथम अपने मन को अत्यंत सरल बनाने की आवश्यकता है। एक छोटे से बच्चे को जिस प्रकार किसी भी वस्तु के प्रति मोह नहीं होता उसी प्रकार एक भक्त के हृदय को भी किसी वस्तु के प्रति कोई मोह नहीं होना चाहिए।

vi) कर्म एवं पुनर्जन्म →

हिंदू चिंतन या सनातन चिंतन के अनुसार कर्म और पुनर्जन्म का महत्व है। माना जाता है कि कर्म के आधार पर ही मनुष्य का जन्म निश्चित होता है। डॉक्टर राधाकृष्णन ने लिखा है कि “कर्म का विधान कहीं बाहर से आरोपित नहीं किया गया है बल्कि यह हमारी अपनी ही प्रकृति में कार्य करता है। मानसिक आदतों का निर्माण, बुराई की ओर बढ़ती हुई प्रवृत्ति, आवृत्ति का दृढ़ होता जाने वाला प्रभाव - जो आत्मा की सशक्त स्वतंत्रता... यह कर्म विधान का ही सिद्धांत है जो मानवीय सम्बन्धों में न्याय करता है। कर्मों में भेद के कारण ही सब मनुष्य एक समान नहीं हैं। किंतु कुछ मनुष्य दीर्घ जीवी होते हैं तो कुछ रोगी रहते हैं, तो कुछ अल्पजीवी तो कुछ स्वस्थ्य होते हैं आदि आदि। इस व्याख्या के बिना मनुष्य अपने-आप को घोर अन्याय का शिकार होते हुए अनुभव करेंगे। दुःख भोगने वाले की भी यह इस रूप में सहायता करता है कि वह अनुभव करता है कि दुःख भोगने से एक पुराना ऋण उतार रहा है और सुखी पुरुष को भी यह नम्र बनाता है क्योंकि वह फिर अच्छे कार्य करेगा, जिससे कि वह फिर सूखभोग के योग्य हो सके”²⁰.. मनुष्य जो भी कर्म करता है चाहे वह नेक कर्म हो या कोई बुरा कर्म वह बिना फल उत्पन्न किए कभी भी नष्ट नहीं होगा। सनातन हिन्दू चिंतन के अनुसार कर्म करने से उसका फल व्यक्ति को अवश्य ही भोगना पड़ेगा। अगर यह देखा जाता है कि कोई व्यक्ति इस जन्म में अत्यंत सुख भोग रहा है तो यह माना जाता है कि उसने अपने पूर्व जन्म में अवश्य ही कोई

बहुत ही अच्छा कर्म किया होगा तभी तो इस जन्म में सुख भोग रहा है। अगले जन्म का निर्धारण कर्म के आधार पर होता है इसका सबसे अच्छा उदाहरण महाभारत में देखने को मिलता है जब महाराज धृतराष्ट्र श्री कृष्ण से पूछते हैं कि वे अंधे क्यों हैं उन्होंने तो अपने सात जन्मों तक अपराध नहीं किया है तब कृष्ण ने उन्हें यह बताया कि सात जन्म से पूर्व उन्होंने एक अपराध किया था। उन्होंने एक पक्षी के 101 बच्चों की आँखों को अंधा बनाया था तो माँ पक्षी के अभिशाप के कारण ही धृतराष्ट्र का यह परिणाम हुआ। इस प्रकार से देखा जाए तो एक जन्म में किए गए कर्मों का फल कई जन्मों के बाद भी प्राप्त हो सकता है।

संदर्भ ग्रंथ सूची

- 1 15/11/2020 को रविवार के दिन मेरे द्वारा लिया गया लेखक नरेंद्र कोहली का साक्षात्कार
- 2 मृणालकांति गंगोपाध्याय, भारत में दर्शनशास्त्र, पृष्ठ संख्य 16
- 3 मृणालकांति गंगोपाध्याय, भारत में दर्शनशास्त्र, पृष्ठ संख्य 12
- 4 मृणालकांति गंगोपाध्याय, भारत में दर्शनशास्त्र, पृष्ठ संख्य 16
- 5 देवीप्रसाद चट्टोपाध्याय, भारतीय दर्शन : सरल परिचय, पृष्ठ संख्या 1
- 6 डॉ सर्वपल्ली राधाकृष्णन, अनुवाद, नंदकिशोर गोभिल, भारतीय दर्शन खंड 1, पृष्ठ संख्या 18
- 7 डॉ सर्वपल्ली राधाकृष्णन, अनुवाद, नंदकिशोर गोभिल, भारतीय दर्शन खंड 1, पृष्ठ संख्या 18
- 8 डॉ सर्वपल्ली राधाकृष्णन, अनुवाद, नंदकिशोर गोभिल, भारतीय दर्शन खंड 1, पृष्ठ संख्या 20

- 9 डॉ सर्वपल्ली राधाकृष्णन, अनुवाद, नंदकिशोर गोभिल, भारतीय दर्शन खंड 1, पृष्ठ संख्या 36
- 10 सुशीला डोभाल, भारत में दर्शनशास्त्र (अनुवाद), पृष्ठ संख्या 46
- 11 स्वामी नित्यमुक्तानंद, स्वामी विवेकानंद की वाणी और रचना तृतीय खंड, पृष्ठ संख्या 71
- 12 डॉ सर्वपल्ली राधाकृष्णन, अनुवाद, नंदकिशोर गोभिल, भारतीय दर्शन भाग 1, पृष्ठ संख्या 113
- 13 डॉ सर्वपल्ली राधाकृष्णन, अनुवाद, नंदकिशोर गोभिल, भारतीय दर्शन भाग 1, पृष्ठ संख्या 74
- 14 डॉ सर्वपल्ली राधाकृष्णन, अनुवाद, नंदकिशोर गोभिल, भारतीय दर्शन भाग 1, पृष्ठ संख्या 276
- 15 डॉ सर्वपल्ली राधाकृष्णन, अनुवाद, नंदकिशोर गोभिल, भारतीय दर्शन भाग 1, पृष्ठ संख्या 276, 277
- 16 डॉ सर्वपल्ली राधाकृष्णन, अनुवाद, नंदकिशोर गोभिल, भारतीय दर्शन भाग 1, पृष्ठ संख्या 122, 123
- 17 डॉ सर्वपल्ली राधाकृष्णन, अनुवाद, नंदकिशोर गोभिल, भारतीय दर्शन भाग 1, पृष्ठ संख्या 167
- 18 डॉ सर्वपल्ली राधाकृष्णन, अनुवाद, नंदकिशोर गोभिल, भारतीय दर्शन भाग 1, पृष्ठ संख्या 143

- 19 डॉ सर्वपल्ली राधाकृष्णन, अनुवाद, नंदकिशोर गोभिल, भारतीय दर्शन भाग 1, पृष्ठ
संख्या 144
- 20 डॉ सर्वपल्ली राधाकृष्णन, अनुवाद, नंदकिशोर गोभिल, भारतीय दर्शन भाग 1, पृष्ठ
संख्या 358

ii. भारतीय दर्शन परम्परा में विवेकानंद का चिंतन

दर्शन की परम्परा काफ़ी प्राचीन है और व्यापक है। लेखक नरेंद्र कोहली कहते हैं कि “हमारा सारा दर्शन वेदों और उपनिषदों में है”। लेखक के शब्दों में “आत्म के विषय में जो जानना है वहीं आध्यात्मिकता है। अगर आप कंचन कामिनी को छोड़ देंगे तो चारों ओर अध्यात्म ही अध्यात्म है”। लेखक नरेंद्र कोहली के अनुसार “भगवत गीता में कृष्ण कहते हैं कि आत्म रक्षा भी धर्म है, परिवार रक्षा भी धर्म है, समाज रक्षा भी धर्म है”।¹.. भारतीय आध्यात्मिक दर्शन के अंतर्गत बहुत सारे दार्शनिक विद्वानों का नाम लिया जा सकता है जैसे शंकराचार्य, बल्लभाचार्य, ऋषि अरोविंद घोष, डॉक्टर सर्वपल्ली राधाकृष्णन, व्यास आदि। इन सभी दार्शनिकों में स्वामी विवेकानंद भी है। स्वामी विवेकानंद एक बहुमुखी प्रतिभाशाली व्यक्ति थे। स्वामी विवेकानंद के दार्शनिक चिंतन के कई पहलू हैं।

(1) सार्वभौमिकता :

भारतीय दर्शन में स्वामी विवेकानंद की चिंता सार्वभौमिक स्तर की है। उन्होंने अमेरिका के शिकागो शहर में भाषण देते समय कहा कि “हे अमेरिकावासी भ्राता और भगिनीगण पृथ्वी में सबसे प्राचीन सन्यासी समाज की ओर से मैं आप लोगों को धन्यवाद देता हूँ। मैं आप लोगों को जो देश सारे धर्मों की जननी या जन्मदात्री है उसके नाम पर धन्यवाद देता हूँ।... मैं आप लोगों को यह कहते हुए गर्व महसूस कर रहा हूँ कि मैं उस जाति से संबंधित हूँ जिसने संसार की पीड़ित जातियों को सदैव ही संरक्षण प्रदान किया है...”।².. स्वामी विवेकानंद ने अमेरिका के शिकागो में इस भाषण से उन्होंने जो परिचय दिया वह उनका निजी परिचय नहीं था बल्कि पूरे देशवासियों का परिचय था। उन्होंने सही तौर पर तत्कालीन समय में विदेश की धरती पर अपनी मातृभूमि का प्रतिनिधित्व किया। साधारण दृष्टिकोण से अगर देखा जाए तो एक सामान्य व्यक्ति कहीं भी अगर परिचय देगा तो वह अपना निजी परिचय देगा, अपने बारे में बताएगा कि वह ऐसा है, वह वैसा है लेकिन विवेकानंद ने वैसा नहीं किया था। भारत की सार्वभौमिकता को स्थापित करने का ही उन्होंने प्रयास किया और वे इस कार्य में सफल भी हुए थे। वेदों में

साथ-साथ बोलने और साथ-साथ चलने की बात कही गई है उसी विषय का संदेश उन्होंने अमेरिका के निवासियों को प्रदान किया था।

(2) अद्वैतवाद :

भारत में अनेक ईश्वर नहीं हैं बल्कि एक ही ईश्वर को विभिन्न रूपों में पुकारने की स्वतंत्रता है यह बात स्वामीजी ने शिकागो के नौवें दिन के भाषण में बताई थी। स्वामी विवेकानंद की यह मान्यता है कि अद्वैतवाद ही एकमात्र धर्म है जो आधुनिक विज्ञान से मेल खाती है। स्वामी विवेकानंद के अनुसार “अद्वैतवाद ही एकमात्र धर्म है, जो आधुनिक वैज्ञानिकगणों के सिद्धांतों के साथ ऐसी बात नहीं है कि केवल भौतिक और आध्यात्मिक दोनों तरफ ही मिलती है। बल्कि उन समस्त सिद्धांतों की अपेक्षा से भी उच्चतम सिद्धांत की स्थापना करती है ...”¹³..

अद्वैतवादी दर्शन के आधार पर स्वर्ग की परिकल्पना यह है कि किसी का न तो जन्म होता है और न ही मृत्यु होती है, स्वर्ग भी नहीं है, नरक भी नहीं है इन तीनों चीजों का कोई अस्तित्व ही नहीं है। स्वामी विवेकानंद की मान्यता है कि जन्म और मृत्यु केवल दृष्टि का ही परिवर्तन है यह और कुछ नहीं है। कोई भी व्यक्ति कहीं नहीं जाता है। जिन वस्तुओं पर व्यक्ति अपना नज़र दौड़ाता है वे भी कहीं नहीं जाती हैं। मनुष्य का कहीं भी आना-जाना इस कारण सम्भव नहीं है क्योंकि वह सर्वव्यापी है। अद्वैतवादियों के अनुसार मनुष्य को पहले आत्मा के बारे में सुनना चाहिए उसके बाद उसके बारे में मनन करना चाहिए फिर ध्यान करना चाहिए। लेखक नरेंद्र कोहली के अनुसार “उनका अध्यात्म दर्शन तो सीधा-सीधा अद्वैतवाद है। चाँद, तारे सब कुछ उस ईश्वर का ही अंग है”¹⁴..

(3) कर्म का सिद्धांत :

विवेकानंद की दृष्टि में भारतीय आध्यात्मिक दर्शन में कर्म सिद्धांत का बड़ा महत्व है। आध्यात्मिक दृष्टि से जो भी कुछ किया जाता है वहीं कर्म कहलाता है इस संसार में कोई भी ऐसा नहीं जो कर्म से मुक्त हो सभी को कर्म करने पड़ते हैं। स्वयं भगवान श्री कृष्ण अर्जुन से कहते हैं कि ‘हे अर्जुन मैं क्षण-भर भी कर्म के बिना नहीं रह सकता। यद्यपि मुझे कर्म करने की कोई आवश्यकता नहीं है लेकिन फिर भी मैं निरंतर कर्म करता रहता हूँ क्योंकि

मैं संसार से प्रेम करता हूँ। और मेरा यह प्रेम अनासक्त भाव का है। स्वामी विवेकानंद कहते हैं कि वे लोगों से बातचीत कर रहे हैं। यह कर्म है, लोग सुन रहे हैं। यह भी कर्म है। साँस लेना भी कर्म है। स्वामीजी यह भी कहते हैं कि अपनी वर्तमान परिस्थिति के लिए मनुष्य स्वयं ही ज़िम्मेदार है और जो कुछ होना चाहें उसकी शक्ति भी मनुष्य में है। मनुष्य की वर्तमान अवस्था उसके पूर्व कर्मों का फल है, तो यह निश्चित है कि व्यक्ति भविष्य में जो कुछ होना चाहता है वह उसके वर्तमान कार्य द्वारा ही निर्धारित होगा। अतएव उसे यह जान लेना आवश्यक है कि कर्म किस प्रकार किया जाना चाहिए। “कर्मयोगी वहीं है जो समझता है कि सर्वोच्च आदर्श ‘अप्रतिकार’ है जो जानता है कि यह अप्रतिकार ही है जिसे अन्याय का प्रतिकार कहते हैं, वह इस अप्रतिकार रूप उच्चतम शक्ति की प्राप्ति में एक सीढ़ी मात्र है। इस सर्वोच्च आदर्श को प्राप्त करने के पहले अन्याय का प्रतिकार करना मनुष्य का कर्तव्य है। पहले वह कार्य करे, युद्ध करे यथाशक्ति प्रतिद्वंद्विता जब उसमें प्रतिकार की वह शक्ति आ जाएगी, केवल तभी अप्रतिकार उसके लिए गुणस्वरूप होगा”।⁵.. गौरतलब है कि भगवान श्री कृष्ण भी आसक्त न होकर कार्य करने की प्रेरणा देते हैं। मनुष्य को उसी प्रकार सांसारिक कर्मों के प्रति अनासक्त रहना चाहिए जिस प्रकार कमल के पुष्प में पानी नहीं लगता है। कर्म सिद्धांत के आधार पर स्वामी विवेकानंद ने यह स्वीकार किया कि कोई कार्य चाहे वह अच्छा हो या बुरा बिना फल उत्पन्न किए वह कभी भी नष्ट नहीं होता। उनकी मान्यता थी कि जिस प्रकार कोई बुरा कर्म करने पर संसार की कोई भी शक्ति उस फल को पाने से रोक नहीं सकती। उसी प्रकार मनुष्यों द्वारा किए गए सद कर्म के फल को इस संसार की कोई भी शक्ति रोक नहीं पाती। अपने अभीष्ट लक्ष्य की प्राप्ति हेतु निरंतर कर्मशील बने रहने की प्रेरणा देते हुए स्वामी विवेकानंद ने कहा है कि “Arise, awake, stop not until your goal is achieved.”⁶.. उठो, जागो और तब न रुको जब तक तुम्हारा लक्ष्य तुम्हें प्राप्त न हो जाए।

कर्म दर्शन पर बात करते हुए स्वामी विवेकानंद कहते हैं “गीता कर्मयोग की शिक्षा देती है। योगरूढ़ होकर हमें कर्म करना होगा। इस योगरूढ़ अवस्था में शूद्र अहं बोध नहीं रहता है। योगयुक्त होकर कर्म करने से मैं कर रहा हूँ यह बोध कभी नहीं रहता है।...”। आगे

स्वामी विवेकानंद ने उदाहरण देते हुए कहा कि “अर्जुन ने भीष्म और द्रोण का वध किया था। ऐसा न करने से दुर्योधन को पराजित करना सम्भव नहीं होता। अशुभ शक्ति की शुभ शक्ति के ऊपर प्रधानता होती एवं देश में एक विपर्यय आता। अहंकारी राजाओं का एक समूह बलपूर्वक देश के शासन में अधिकार करता एवं प्रजाजनों की चरम दुर्गति उपस्थित होती। श्री कृष्ण ने कंस, जरासंध आदि अत्याचारी राजाओं का वध किया किंतु एक भी कार्य उन्होंने अपने लिए नहीं किया। प्रत्येक कार्य ही उन्होंने दूसरों के कल्याण के लिए किया। दीपक की रोशनी में हम गीता पाठ कर रहे हैं किंतु कुछ कीड़े-मकोड़े आदि जल कर मर रहे हैं। इस प्रकार से विचार किया जाए तो यह देखा जा सकता है कि कर्म में कुछ न कुछ दोष तो रहेगा ही। जो अहंकार को विसर्जित करते हुए कार्य करते हैं कर्म का दोष उन्हें स्पर्श नहीं कर सकता क्योंकि संसार के हित के लिए वे कार्य करते हैं। निष्काम और अनासक्त होकर कार्य करने से सर्वाधिक आनंद और मुक्ति की प्राप्ति होती है”।^{7..} आलोच्य पंक्तियों में स्वामीजी ने विश्व के सभी मनुष्य को सदैव कर्मशील बने रहने की प्रेरणा दी है सारे कार्यों को भगवान के प्रति समर्पित करना चाहिए। यहीं भारतीय आदर्श है। यहीं भारतीय दर्शन है। भारतीय दर्शन में कर्मयोग पर बात करते हुए स्वामी विवेकानंद ने यह दर्शाने का प्रयास किया है कि जिस प्रकार सभी कर्म श्रेष्ठ हैं कोई भी कर्म छोटा या बड़ा नहीं है ठीक इसी प्रकार से उन्होंने भारतीय दर्शन के इस हिस्से को अमेरिका की धरती पर स्थापित करने का प्रयास किया कि भारतीय दार्शनिक चिंतन यह भी बताता है कि संसार के सभी व्यक्ति अपने-अपने कर्म मार्ग में बड़े हैं।

(4) मनुष्य का वास्तविक स्वरूप :

भारतीय दर्शनशास्त्र संसार के मनुष्यों को उनके यथार्थ स्वरूप को जानने पर विशेष बल प्रदान किया करता है। व्यक्ति जब तक इंद्रियों में आबद्ध रहेगा साथ ही साथ सांसारिक जगत के मोह-माया में पड़ा रहेगा तब तक अपने यथार्थ स्वरूप के बारे में जान नहीं पाएगा। स्वामी जी कहते हैं कि “तुम्हारी एक आत्मा है मेरी एक आत्मा है, सभी का अलग-अलग आत्मा है और एक सूक्ष्म शरीर भी है ; उस सूक्ष्म शरीर की सहायता से उस स्थूल शरीर में कार्य करते हैं। अब उस आत्मा के स्वरूप के बारे में प्रश्न उठा है कि शरीर और मन से पृथक

उस आत्मा का वास्तविक स्वरूप क्या है”⁸.. भारतीय दार्शनिक चिंतन के अनुसार आत्मा एक ऐसा तत्व है जो देश काल और मन से परे है इसे किसी भी काल या किसी भी गुण के अंतर्गत नहीं बांधा नहीं जा सकता।

(5) मायावाद से मुक्त :

संसार में अगर माया नहीं होती तो इस सुंदर प्रकृति में मानव का जन्म न हुआ होता। संसार भले ही मायामय है लेकिन भारतीय आध्यात्मिक दर्शन के अनुसार मनुष्य को इस मायामय जगत में स्वयं को भूला नहीं देना है बल्कि इस मायामय जगत में मनुष्य को जन्म ही इस कारण मिला है कि इस सांसारिक माया का अतिक्रमण करते हुए मायाधीश के श्री चरणों में स्वयं को पूर्ण रूप से समाहित कर देना है। स्वामी विवेकानंद कहते हैं “साधारणतः कल्पना के अर्थ में ही माया शब्द का प्रयोग होता है। वैदिक साहित्य में ‘कुहक’ के अर्थ में ही माया शब्द का प्रयोग दिखाई देता है यहीं माया शब्द का प्राचीन अर्थ है। श्वेताश्वेतेश्वर उपनिषद में कहा गया है कि माया ही प्रकृति है और मायी महेश्वर है। जननी यत्नपूर्वक संतान का पालन-पोषण कर रही हैं। उनका समस्त मन, समस्त जीवन उस संतान के प्रति आसक्त है। बालक बड़ा होकर हो सकता है पशुवत होकर प्रत्येक दिन माता को पदाघात करता है। जननी फिर भी पुत्र के प्रति आसक्त हैं। जब उनकी विचार शक्ति का जागरण होता है तब वे उस शक्ति को स्नेह के आवरण में ढक देती हैं।...⁹.. यह संसार वास्तव में स्नेह और माया का बंधन है और इसी माया के कारण ही हर कोई एक-दूसरे के प्रति आकर्षित होता चला जाता है। स्वामी विवेकानंद के शब्दों में “संसार गति के वर्णन का नाम ही माया है”¹⁰..

इस संसार का हर मनुष्य अपने जीवन की प्रत्येक गतिशीलता में स्वतंत्रता का अनुभव करता है परंतु धीरे-धीरे उसे इस बात की भी अनुभूति होने लगती है कि वह प्रकृति का दास है। क्योंकि कोई भी मनुष्य प्रकृति के नियमों के बाहर नहीं जा सकता। उसे अपने जीवन काल में इन्हीं नियमों के अधीन चलना पड़ता है। इन सब बातों के आधार पर यह कहा जा सकता है कि यह सत्य है कि संसार मायामय है परंतु अध्यात्म दर्शन यह बताता है कि इस मायामय जगत से मनुष्य मुक्त किस प्रकार हो सकता है। स्वामी विवेकानंद के

दृष्टिकोण से भारतीय अध्यात्म दर्शन में मायारूपी संसार से मुक्त होने की चिंतन की भी बड़ी महत्वपूर्ण भूमिका है। माया रूपी संसार से मुक्त होने के लिए भारतीय आध्यात्मिक दर्शन में यह बात कहीं गई है कि 'सर्वभूतेषु ब्रह्म दर्शनम्' अर्थात् इस संसार के जितने भी प्राणी हैं, मानवीय सम्बंध हैं उसमें ब्रह्म तत्व के दर्शन का प्रयास ही मानव का परम कर्तव्य है। अर्थात् अगर कोई व्यक्ति अपने माता-पिता, पुत्र-पुत्री, भाई-बहन पत्नी, मित्र, साधु महात्मा जिस किसी भी सेवा कर रहा हो उन्हीं में उस व्यक्ति को भगवान के स्वरूप का दर्शन करना चाहिए। स्वामी विवेकानंद कहते हैं कि "जब मनुष्य को अपना सब कुछ नष्ट होता हुआ प्रतीत होता है, जब आशाएँ टूट जाती हैं, जब मनुष्य की अपनी निज शक्ति के ऊपर आस्था टूट जाती है जब सब कुछ उसके ऊँगली के बीच से गल जाती हैं और जीवन टूटे हुए खंडहर के रूप में परिणत हो जाता है तब उसे यह वाणी सुनाई देती है"।^{11..}

मनुष्य कितना ही आधुनिक और वैज्ञानिक विचारधारा सम्पन्न क्यों न हों आध्यात्मिक चिंतन को छोड़ ही नहीं सकता। आधुनिक विज्ञान को भी अध्यात्म के मार्ग में आना ही पड़ेगा। स्वामी विवेकानंद का कहना है कि "जब कोई विज्ञान के श्रेष्ठ आचार्य कहते हैं, सब वहीं एक शक्ति का ही विकास है, तब क्या आप लोगों को ऐसा नहीं लगता कि वे उपनिषदों में वर्णित उसी परम ब्रह्म की शक्ति का ही कीर्तन कर रहे हैं"।^{12..} स्वामीजी के कथन के आधार पर यह कहा जा सकता है कि इस संसार में, अनंत ब्रह्मांड में शक्ति के एकमात्र आधार परम ब्रह्म ही हैं।

(6) कपिल दर्शन का महत्व :

स्वामी विवेकानंद की मान्यता है कि भारतीय दर्शनशास्त्र के अंतर्गत आने वाला कपिल दर्शन का विश्व के दर्शनशास्त्र में काफ़ी महत्व है। संसार का ऐसा कोई दर्शनशास्त्र नहीं है जो कपिल दर्शन के निकट ऋणी है। स्वामी विवेकानंद के शब्दों में -"वैश्विक रूप से एक मनुष्य की बात सोचें पहले उसके भीतर वहीं साम्यव्यवस्थापन प्रकृति का अंश है। वहीं जड़ प्रकृति उसके भीतर महत रूप में परिणत हुई है, वहीं महत सर्वव्यापी वृद्धितत्व का एक अंश उसके भीतर विद्यमान है। और उसी सर्वव्यापी वृद्धितत्व का क्षुद्र अंश उसके भीतर अहंकार में परिणत हुआ है --- यह उसी सर्वव्यापी अहंत्व का क्षुद्र अंश मात्र है। यहीं

अहंकार फिर इन्द्रिय और तन्मात्रा के रूप में परिणत हुआ है। तन्मात्राओं को पुनः एक-दूसरे से परस्पर मिलाकर उन्होंने निज क्षुद्रब्रह्मांड -- देह सृष्टि किया है। इस विषय को मैं आप लोगों को स्पष्ट रूप से समझाना चाहता हूँ, क्योंकि वेदांत को समझने हेतु यह पहला सोपान है; और यह आप लोगों को जानना आवश्यक है, क्योंकि यह समस्त संसार के विभिन्न प्रकार के दर्शन का आधार है”।...¹³.. आलोच्य पंक्तियों के द्वारा स्वामी विवेकानंद ने यह दर्शाने का प्रयास किया कि कपिल दर्शन ही वह आधार है जिससे सम्पूर्ण विश्व में विभिन्न दार्शनिक गतिविधियों का विकास हुआ।

(7) सांख्य दर्शन :

स्वामी विवेकानंद के दृष्टिकोण से सांख्य दर्शन में प्रकृति को काफ़ी महत्व दिया गया है। मनुष्य के मन में उत्पन्न होने वाले जितने विकार हैं, चिंता, बुद्धि, विचार, द्वेष, क्रोध इंद्रियों के माध्यम से अनुभव किए जाने वाले रूप, रस, गंध, स्पर्श आदि ये सारी वस्तुएँ इस प्रकृति के माध्यम से ही प्राप्त होती हैं। प्राण के साथ श्वास-प्रश्वास का कोई सम्बंध नहीं है। श्वास-प्रश्वास इस प्राण या सर्वव्यापी शक्ति का एक कार्य मात्र है। यहाँ प्राण शब्द का अभिप्राय उस वस्तु से है जिसके माध्यम से समग्र देह का संचालन होता है। स्वामी विवेकानंद के अनुसार “अगर वायु के माध्यम से ही श्वास-प्रश्वास कार्य होता तब तो मरे हुए व्यक्ति की भी श्वास और प्रश्वास की क्रिया होती। प्राण ही वायु के ऊपर कार्य करता है वायु प्राण के ऊपर कार्य नहीं करती। प्राण ही जीवन शक्ति के रूप में सम्पूर्ण शरीर के ऊपर कार्य कर रहा है। “मन और इन्द्रिय का भी शरीर के संचालन में प्रभाव पड़ता है”।¹⁴..

इस संसार में प्रकृति एवं प्राण की भूमिका है। जीवन की शक्ति को संचालित करने के लिए प्राण एक आधार के रूप में कार्य करता है। कपिल दर्शन के अनुसार मानव में जो स्वाभाविक गुण क्रोध, द्वेष, प्रेम आदि हैं वे सभी इसी प्रकृति की ही देन है। प्राण एक स्वतंत्र और सर्वव्यापी सत्ता है। प्राण ही वह शक्ति है जिसके माध्यम से इस संसार के जितने भी प्राणी हैं उनके देह में वायु संचालन होता है। कपिल दर्शन इस बात को स्वीकार करता हुआ प्रतीत हो रहा है कि इस मनुष्य शरीर में प्राण ही प्रधान वस्तु है उसके बिना श्वास वायु अकेले कोई कार्य कर ही नहीं सकती है। वायु अगर अकेले प्राण के बिना कार्य कर सकती

तो मनुष्य के देहावसान हो जाने के उपरांत भी उसकी श्वास-प्रश्वास की प्रक्रिया का संचालन अवश्य ही होता। कपिल की प्रधान मान्यता परिणाम है। वे कहते हैं कि “एक वस्तु दूसरे वस्तु का परिणाम या विकार है; क्योंकि कार्य कारण की भावना का लक्षण यह है कार्य जो है वहीं कारण के रूप में परिणत होता है”।^{15..}

सांख्य दर्शन के खिलाफ वेदांतियों की विचारधारा को दर्शाते हुए कहा गया है कि अगर प्रकृति और आत्मा दोनों ही अमिश्रित पदार्थ हैं तब तो आत्मा की भाँति ही इस प्रकृति में भी किसी भी प्रकार का कोई परिवर्तन होगा ही नहीं। वेदांतियों की मान्यता है कि “जिस स्थूल और जड़ से बुद्धि तक प्रकृति के सारे विकार अचेतन हैं, तब जिससे मन चिंतन कर सके और प्रकृति कार्य कर सके, इसके लिए इनके पीछे परिचालक शक्ति के रूप में एक चैतन्यमय पुरुष के अस्तित्व को स्वीकार करना आवश्यक है। इस समग्र ब्रह्मांड के पीछे वह चैतन्यमय पुरुष विद्यमान हैं। उन्हें ही ईश्वर कहते हैं, अतः यह संसार उनसे अलग नहीं है। वे ही इस संसार के निमित्त कारण और उपादान कारण हैं”।^{16..} गौरतलब है कि वेदांत दर्शन यह मानता है कि आत्मा उस परम ब्रह्म के अंश के अतिरिक्त और कुछ भी नहीं है।

अर्थात् प्रकृति कई तत्वों से मिलकर बनी हुई है क्योंकि उसमें परिवर्तन होते रहते हैं। प्रकृति को चेतनशील परमब्रह्म ही बनाता है। ईश्वर की शक्ति के बिना प्रकृति एक अचेतनशील पदार्थ मात्र है। ईश्वर ही मानव मन में चिंतन की शक्ति प्रदान करते हैं। कहा जाता है कि उस परम ब्रह्म के निर्देश के बिना वृक्ष का एक पत्ता तक हिल नहीं सकता। वे ही इस जगत में समस्त कारणों के मूल आधार हैं अतः यह सम्पूर्ण संसार उनसे अभिन्न है। वेदांत यह भी कहता है कि जिस प्रकार से अग्नि राशि से हज़ारों स्फुलिंग बाहर निकलते रहते हैं ये जो अनेकों आत्माओं की अनुभूति होती है यह भी वैसा ही है। ये सभी एक ही और उसी पुरातन पुरुष से ही निकली हैं। यहाँ पुरातन पुरुष शब्द का प्रयोग उस अखंड परमब्रह्म के लिए ही किया गया है। अनंत सत्ता विभाजित नहीं होते परंतु ऐसा प्रतीत होता है कि वे विभाजित होते हैं। वेदांत दर्शन यह भी बताता है कि जब ईश्वर को देश काल के जाल के बीच से देखा जाता है, तब वह जड़ पदार्थ है।

(8) प्रेम का वास्तविक स्वरूप :

अगर प्रेम के वास्तविक स्वरूप की बात की जाए तो आत्मा के प्रति प्रेम ही वास्तविक प्रेम है। मनुष्य किसी के प्रति प्रेम करता है तो वह उस व्यक्ति के प्रति नहीं बल्कि उसमें निहित आत्मा जो उसका वास्तविक स्वरूप है उससे प्रेम करता है।

स्वामी विवेकानंद ने आत्मा के वास्तविक स्वरूप के प्रति प्रेम को ही प्रेम का वास्तविक स्वरूप माना है। स्वामीजी ने याज्ञवल्क्य ऋषि की विचारधाराओं का उदाहरण देते हुए समझाने का प्रयास किया है। अगर कोई व्यक्ति अपनी स्त्री से प्रेम करता है तो वह स्त्री के दृष्टिकोण से प्रेम नहीं करता है बल्कि वह आत्मा के प्रेम के कारण ही स्त्री से प्रेम करता है। अगर कोई व्यक्ति ब्राह्मण से प्रेम करता है तो वह उसे उसके ब्राह्मण होने के कारण प्रेम नहीं करता है बल्कि ब्राह्मण भी उसी अखंड आत्मा का ही स्वरूप है इसीलिए वह ब्राह्मण से प्रेम करता है। ठीक इसी प्रकार से अगर कोई क्षत्रिय के प्रति भी अपना प्रेम प्रदर्शित करता है तो वह उस व्यक्ति के क्षत्रिय होने के कारण नहीं बल्कि उसमें उस आत्मा की विराजमानता के कारण ही वह उससे प्रेम करता है। प्रेम मनुष्य का एक स्वाभाविक धर्म है। वह उस प्रेम के बिना जीवित नहीं रह सकता। देवताओं को मनुष्य जो प्रेम करता है वह उस आत्मा के प्रति प्रेम के कारण ही है। इस संसार से मनुष्य जो प्रेम करता है वह उसी आत्मा के प्रति प्रेम की भावना के कारण ही है। अतः इस आत्मा के बारे में ज्ञान प्राप्त करना होगा, चिंतन करना होगा, मनन करना होगा और ध्यान करना होगा।

याज्ञवल्क्य ऋषि की इन बातों के वास्तविक यथार्थ को समझाते हुए स्वामी विवेकानंद ने जो कुछ कहा है उसका मूल भाव इस प्रकार है ईश्वर के प्रति प्रेम ही यथार्थ प्रेम है। प्रत्येक प्राणियों के भीतर ब्रह्म आत्मा के रूप में विराजमान है। मनुष्य को इस संसार में लोगों के प्रति प्रेम है उसे अगर आत्मा के दृष्टिकोण से देखा जाए तो वह स्थायी होता है और उसमें कोई स्वार्थ की भावना नहीं होती क्योंकि तब प्रेम ईश्वर के प्रति ही समर्पित हो जाता है। यहाँ कहा जा रहा है कि जो ब्राह्मण को ब्राह्मण के रूप में प्रेम करते हैं, ब्राह्मण उसका परित्याग करते हैं, संसार के निवासी उसका त्याग करते हैं। इसका अभिप्राय यह है कि किसी भी प्राणी के साथ, किसी भी व्यक्ति के साथ प्रेम करते हुए जब तक यह बोध मन में जागृत नहीं हो पाता कि इस प्रेम के द्वारा उस ईश्वर से ही प्रेम किया जा रहा है जो

उस व्यक्ति के भीतर आत्मा रूप में विराजमान है तब तक प्रेम में स्वार्थ की भावना छिपी हुई होती है। स्वामीजी ने एक उदाहरण के माध्यम से इस बात को समझाने का प्रयास किया है वे कहते हैं “मान लीजिए मैं किसी नारी से प्रेम करता हूँ, यदि मैं उस नारी को आत्मा से पृथक रूप में, विशेष रूप में देखता हूँ तो वह शाश्वत प्रेम नहीं हुआ। वह स्वार्थपूर्ण हो गया, और दुःख ही उसका परिणाम है; किंतु जब उस नारी को आत्मा रूप में देखता हूँ, तभी वह प्रेम यथार्थ प्रेम हो जाता है, उसका कभी विनाश नहीं होता”।¹⁷.. आलोच्य उदाहरण के द्वारा ऐसा प्रतीत होता है कि स्वामीजी यहीं बताना चाहते हैं कि जब व्यक्ति अपने प्रेम की वस्तु में नित्य चैतन्य स्वरूप परमब्रह्म की उपस्थिति को भूल जाता है तभी व्यक्ति के मन में पीड़ा होती है दुःख की उत्पत्ति होती है। किंतु जब वह उसे ब्रह्म के स्वरूप में देखता है तब उसका प्रेम शाश्वत और स्थायी होता है।

भारतीय दार्शनिक चिंतन पर स्वामीजी विवेकानंद के चिंतन पर बात करते हुए यह कहा जा सकता है कि वेदांत दर्शन समानता की बात करता है वह किसी से विरोध नहीं करता। वेदांत में लोकतंत्रात्मकता है। वेदांत की मान्यता यह है कि अगर मैं ईश्वर हूँ तो दूसरा व्यक्ति भी ईश्वर ही है। वेदांत में पाप को भी स्वीकार नहीं किया गया है। वेदांत केवल एक ही बात स्वीकार करता है वह यह है कि स्वयं को या किसी दूसरे व्यक्ति को पापी मान लेना ही पाप है। वेदांत मनुष्य को इस बात की शिक्षा देता है कि यथार्थ वस्तु तो उसके भीतर ही विद्यमान है इसके लिए व्यक्ति को बाहर भटकने की कोई आवश्यकता नहीं है। मनुष्य का भूत, भविष्यत और वर्तमान सब कुछ उसके भीतर ही समाहित है। वेदांत के अनुसार जीव ही ब्रह्म है। ईश्वर सभी के भीतर ही विद्यमान है। यहीं कारण है कि कहा गया है कि ईश्वर सबके साँस में बसा हुआ है। कबीर ईश्वर भक्त को सम्बोधित करते हुए कहते हैं कि ‘हे भक्त तू मुझे कहाँ खोजने के लिए जाएगा “मैं तो तेरे पास में हूँ मैं तो तेरे सासों में ही बसा हुआ हूँ’।

संदर्भ ग्रंथ सूची

- 1 लेखक नरेंद्र कोहलीजी ने 15/11/2020 को रविवार के दिन मेरे द्वारा लिया गया साक्षात्कार
- 2 स्वामी नित्यमुक्तानंद, विवेकानंद की वाणी और रचना, प्रथम खंड, पृष्ठ संख्या 7, 8
- 3 स्वामी नित्यमुक्तानंद, स्वामी विवेकानंद की वाणी और रचना, द्वितीय खंड, पृष्ठ संख्या 76
- 4 लेखक नरेंद्र कोहली से 15/11/2020 को मेरे द्वारा लिया गया साक्षात्कार
- 5 स्वामी विवेकानंद, कर्मयोग, पृष्ठ संख्या 22
- 6 Swami Vivekananda, Thoughts To Inspire, page no. 22
- 7 स्वामी नित्यमुक्तानंद, स्वामी विवेकानंद की वाणी और रचना, प्रथम खंड, पृष्ठ संख्या 128,129 और 130
- 8 स्वामी नित्यमुक्तानंद, स्वामी विवेकानंद की वाणी और रचना, द्वितीय खंड, पृष्ठ संख्या 21
- 9 स्वामी नित्यमुक्तानंद, स्वामी विवेकानंद की वाणी और रचना, द्वितीय खंड, पृष्ठ संख्या 1
- 10 स्वामी नित्यमुक्तानंद, स्वामी विवेकानंद की वाणी और रचना, द्वितीय खंड, पृष्ठ संख्या 7
- 11 स्वामी नित्यमुक्तानंद, स्वामी विवेकानंद की वाणी और रचना, द्वितीय खंड, पृष्ठ संख्या 63, 64

- 12 स्वामी नित्यमुक्तानंद, स्वामी विवेकानंद की वाणी और रचना, द्वितीय खंड, पृष्ठ संख्या
79
- 13 स्वामी नित्यमुक्तानंद, स्वामी विवेकानंद की वाणी और रचना, तृतीय खंड, पृष्ठ संख्या
19
- 14 स्वामी नित्यमुक्तानंद, स्वामी विवेकानंद की वाणी और रचना, तृतीय खंड, पृष्ठ संख्या
27
- 15 स्वामी नित्यमुक्तानंद, स्वामी विवेकानंद की वाणी और रचना, तृतीय खंड, पृष्ठ संख्या
27
- 16 स्वामी नित्यमुक्तानंद, स्वामी विवेकानंद की वाणी और रचना, तृतीय खंड, पृष्ठ संख्या
38
- 17 स्वामी नित्यमुक्तानंद, स्वामी विवेकानंद की वाणी और रचना, तृतीय खंड, पृष्ठ संख्या
59